[2019] 2 उम. नि. प. 124

# सुंकारा लक्ष्मीनारासम्मा (मृत) मार्फत इसके विधिक प्रतिनिधिगण

बनाम

# सागी सुब्बा राजू और अन्य

28 नवम्बर, 2018

**न्यायमूर्ति एन. वी. रमण, न्यायमूर्ति मोहन एम. शांतनगौडर और न्यायमूर्ति एम. आर. शाह**

**संविधान, 1950 – अनुच्छेद 133 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 22 का नियम 4] – अपील – प्रश्नगत संपत्ति के संबंध में विल निष्पादित करना – विल को अभिलेख पर सम्यक् रूप से साबित करना – उस विल के आधार पर प्राप्त हक, हित और अन्यसंक्रामण करने की शक्ति का प्रयोग करते हुए प्रश्नगत संपत्ति को अंतरित करना – अंतरण को चुनौती देना – अंतरण को विधिमान्य और युक्तियुक्त अभिनिर्धारित करना – यदि अभिलेख पर यह सिद्ध कर दिया जाता है कि किसी व्यक्ति ने प्रश्नगत संपत्ति के संबंध में, एक विधिमान्य विल के आधार पर उसमें अपना हक, हित और अन्यसंक्रामण करने की शक्ति प्राप्त कर लिया है तो उसके द्वारा उस संपत्ति का विक्रय विलेख के माध्यम से किसी अन्य व्यक्ति को अंतरित करना, विधिमान्य और युक्तियुक्त होगा ।**

**संविधान, 1950 – अनुच्छेद 133 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 22 का नियम 4] – अपील – वाद लंबित रहने के दौरान पक्षकारों में से कुछ पक्षकार की मृत्यु होना या उन्हें पक्षकार की सूची से हटा दिया जाना – उनके स्थान पर उनके विधिक प्रतिनिधि/प्रतिनिधियों को अभिलेख पर नहीं लाया जाना – मामले में अंतिम निर्णय और आदेश पारित किया जाना – इन परिस्थितियों में ऐसा अंतिम निर्णय और आदेश उन पक्षकारों पर आबद्धकर नहीं होगा जिनकी मृत्यु हो गई है या जिन्हें पक्षकारों की सूची से हटा दिया गया है और उनके स्थान पर उनके विधिक प्रतिनिधि/प्रतिनिधियों को अभिलेख पर नहीं लाया गया है ।**

वर्तमान मामले में, 1984 की मूल वाद सं. 1998, प्रतिवादी सं. 5 से 25 के विरुद्ध अनुसूची-क संपत्ति के विभाजन के लिए फाइल किया गया था । इस वाद में, मात्र वीरास्वामी (वादी लक्ष्मीनारासम्मा का पुत्र) द्वारा किए गए एक अन्यसंक्रामण को चुनौती दी गई थी, यद्यपि, वीरास्वामी ने अनुसूची-क के अधीन आने वाले विभिन्न अन्य संपत्तियों का विभिन्न विक्रय विलेखों द्वारा अन्यसंक्रामण किया था । 1984 की मूल वाद सं. 97, अनुसूची-क और ख संपत्तियों के विभाजन के साथ ही उक्त संपत्तियों से प्रतिवादी सं. 26 से 125 और 127 की बेदखली के लिए फाइल किया गया था । 1983 की मूल वाद सं. 72 को सागी सुब्बा राजू (इन अपीलों में प्रत्यर्थियों में से एक) द्वारा भीमावरम् ग्राम के राजस्व सर्वे सं. 347 और 347/3 के 3 एकड़ 56 सेंट्स की सीमा तक की भूमि के बारे में स्वर्गीय वीरास्वामी द्वारा निष्पादित तारीख 19 सितम्बर, 1974 के विक्रय करार के विनिर्दिष्ट पालन के लिए फाइल किया गया था । 1984 की मूल वाद सं. 97 और 1984 की मूल वाद सं. 98 (अनुसूची-क और ख संपत्तियों का विभाजन के लिए) को विचारण न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था और प्रथम अपील न्यायालय द्वारा 1983 की मूल वाद सं. 72 (विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद) को वादी सागी सुब्बा राजू के पक्ष में संपत्ति का 1/3 भाग का विक्रय का निर्देश देते हुए भागत: डिक्री करते हुए पुष्टि कर दी गई थी और ऐसी डिक्री को प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पुष्टि कर दी गई थी । इन निर्णयों और डिक्रियों से व्यथित होकर अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलें फाइल कीं जिनमें वे असफल रहे । इसलिए, सागी सुब्बा राजू, जिसने विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद में संपत्ति का 1/3 भाग प्राप्त किया था, ने भी उच्च न्यायालय के समक्ष 1992 की लेटर्स पेटेंट अपील सं. 323 फाइल कीं । उच्च न्यायालय द्वारा इन सभी अपीलों को एक साथ सुना गया और इसमें के अपीलार्थियों के विरुद्ध विनिश्चय दिया गया जिसका अभिप्राय है कि 1984 की मूल वाद सं. 97 और 98 में पारित खारिज निर्णयों और डिक्रियों की उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ द्वारा भी पुष्टि कर दी गई थी । इस प्रकार, तीनों न्यायालयों द्वारा इसमें के अपीलार्थियों के विरुद्ध विभाजन के लिए अपीलार्थियों द्वारा फाइल उन दोनों वादों के संबंध में समवर्ती निष्कर्ष निकाले गए हैं । 1983 की मूल वाद सं. 72 के संबंध में भी खंड

न्यायपीठ ने सागी सुब्बा राजू के पक्ष में यथा प्रार्थित और इसमें के अपीलार्थियों के विरुद्ध डिक्री मंजूर कर ली थी । दूसरे शब्दों में, विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद भी इसमें के अपीलार्थियों के विरुद्ध पूर्णत: डिक्री कर दिया गया था । अतएव, अपीलार्थियों ने इस न्यायालय के समक्ष अपीलें फाइल की हैं । न्यायालय द्वारा अपीलें खारिज करते हुए,

**अभिनिर्धारित** – प्रदर्श बी-4, तारीख 24 अगस्त, 1932 का विल, अनुसूची-क संपत्ति से संबंधित है । उक्त विल, सुंकारा पदमनाभुदु, जो स्वीकृतत: अनुसूची-क संपत्ति का स्वामी था, द्वारा निष्पादित की गई थी । उसके कोई संतान नहीं थी । उसकी पत्नी की भी उसकी मृत्यु के ठीक पश्चात् मृत्यु हो गई थी । उक्त विल के अधीन हिताधिकारी वीरास्वामी था, जो अन्यथा भी सुंकारा वेंकटरमैया (सुंकारा पदमनाभुदु का भाई) के पौत्र के अलावा कुछ नहीं था । प्रदर्श बी-106, तारीख 5 दिसम्बर, 1968 का विल, अनुसूची-ख संपत्ति से संबंधित है । उक्त विल को लक्ष्मीपति (वीरास्वामी का पिता) द्वारा अपने पुत्र वीरास्वामी के पक्ष में निष्पादित किया गया था । सुंकारा पदमनाभुदु की मृत्यु तारीख 20 अगस्त, 1932 को हुई थी और लक्ष्मीपति की मृत्यु तारीख 21 जनवरी, 1969 को हुई थी । इस प्रकार, सुंकारा पदमनाभुदु और लक्ष्मीपति की मृत्यु के पश्चात् वीरास्वामी अनुसूची-क और ख, संपत्तियों का स्वामी हो गया था । अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए कुछ नहीं है कि अनुसूची-ख की संपत्तियां, लक्ष्मीपति और उसके पुत्र की संयुक्त संपत्तियां थीं । इसलिए भी वादियों द्वारा यह सिद्ध नहीं किया गया है कि अनुसूची-ख की संपत्तियां विभाजन के लिए उपलब्ध थीं । उक्त मुद्दे पर विभाजन वादों में अपीलार्थियों/वादियों के विरुद्ध तीनों न्यायालयों के समवर्ती निष्कर्ष हैं । वादी लक्ष्मीनारासम्मा, लक्ष्मीपति की द्वितीय पत्नी है, जिसने 1984 की मूल वाद सं. 97 और 98 फाइल करके अपने पुत्र वीरास्वामी द्वारा प्रतिवादी सं. 5 से 125 के पक्ष में किए गए अन्यसंक्रामण को विनिर्दिष्टत: प्रश्नगत नहीं किया है । उसके द्वारा विक्रय विलेखों को रद्द करने के लिए कोई प्रार्थना नहीं की गई है । सभी तीनों न्यायालयों ने तथ्यों के आधार पर यह समवर्ती निष्कर्ष निकाला है कि दोनों विल साबित कर दिए गए हैं । न्यायालय के समक्ष भी विलों इत्यादि की विधिमान्यता के निष्कर्ष को अपीलार्थियों द्वारा

गंभीरतापूर्वक विवादित नहीं किया गया है । अन्यथा भी, तीनों न्यायालयों के निर्णयों का परिशीलन करने के पश्चात्, न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि दोनों विलों के सबूत के संबंध में समनुदेशित कारण और निकाले गए निष्कर्ष न्यायसंगत और समुचित हैं । अतएव, इसमें हस्तक्षेप करना अपेक्षित नहीं है । चूंकि, वीरास्वामी प्रदर्श बी-4 और बी-106 विलों को ध्यान में रखते हुए, संपत्तियों का एकमात्र स्वामी था, इसलिए, स्वाभाविकत: उसे संपत्तियों का अन्यसंक्रामण करने का अधिकार था । प्रतिवादी सं. 5 से 125 और 127 ने वीरास्वामी से मूल्यवान प्रतिफल के एवज में संपत्तियां क्रय की थीं । जैसा कि उपर्युक्त उल्लिखित है, इन प्रतिवादियों/क्रेताओं के पक्ष में किए गए अन्यसंक्रामणों को विभाजन के लिए दोनों उपर्युक्त वादों में अपीलार्थियों द्वारा प्रश्नगत नहीं किया गया था । चाहे जैसी भी स्थिति हो, क्योंकि न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि निचले न्यायालय, यह निष्कर्ष निकालने में न्यायानुमत है कि प्रतिवादी सं. 5 से 125 और 127 के पक्ष में किए गए विक्रय न्यायसंगत और समुचित है और क्योंकि वे मूल्यवान प्रतिफल के एवज में सद्भाविक क्रेता हैं, इसलिए, इसमें हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है । तथापि, अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री ए. सुब्बा राव ने बलपूर्वक अपना तर्क दिया है जहां तक कि यह विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद का संबंध है । उनके अनुसार, इसमें के अपीलार्थियों (विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद में प्रतिवादी) को अत्यधिक कठिनाई होगी यदि विनिर्दिष्ट पालन के लिए डिक्री की पुष्टि की जाती है, क्योंकि विक्रय करार के समय से संपत्तियों के मूल्य में अत्यधिक वृद्धि हुई है । मूल्य में वृद्धि के ऐसे अभिवाक् को इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि अपीलार्थियों को प्रथम प्रेरणा में विक्रय करार को प्रश्नगत करने का कोई अधिकार नहीं था । जैसा कि उपर्युक्त उल्लिखित किया गया है चूंकि वीरास्वामी संपत्तियों जिनमें विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद में अंतर्वलित संपत्तियां सम्मिलित हैं, का पूर्ण स्वामी था, इसलिए, उसे विक्रय करार करने का भी अधिकार था । पदमनाभुदु द्वारा प्रदर्श बी-4 विल के अधीन इस संपत्ति का वीरास्वामी को वसीयत किया गया था । अतएव, वीरास्वामी संपत्ति का एकमात्र स्वामी था । परिणामस्वरूप, उसने पिछले तारीख 19 सितम्बर, 1974 को सागी सुब्बा राजू के साथ विक्रय करार किया था । वाद, वर्ष 1978

में फाइल हुआ था, जो बाद में अन्य न्यायालय में स्थानांतरित हो गया था और उसे 1983 की मूल वाद सं. 72 के रूप में पुन: संख्यांकित किया गया था । वर्ष 1978 से यह मुकदमा भूतलक्षी क्रेता द्वारा लड़ा जा रहा है । वर्ष 1974 में लगभग साढ़े तीन एकड़ की संपत्ति का 51,000/- रुपए के एवज में भूतलक्षी क्रेता के पक्ष में विक्रय करने के लिए वीरास्वामी सहमत हुआ था । ऐसी कीमत के बारे में, विक्रेता के साथ ही भूतलक्षी क्रेता के बीच सहमति हुई थी । यह न्यायालय, उक्त क्षेत्र अर्थात् भीमावरम् ग्राम, आंध प्रदेश में वर्ष 1974 में यथास्थित संपत्ति के मूल्य की कल्पना नहीं कर सकता है । चाहे जैसे भी स्थिति हो, न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि विचारण न्यायालय के समक्ष इसमें के अपीलार्थियों द्वारा न तो ऐसा अभिवचन किया गया न ही साबित किया गया है । विचारण न्यायालय के समक्ष प्रयास करने से संबंधित कोई विवाद्यक उद्भूत नहीं किया गया था । अभिवाक्, जो विचारण न्यायालय के समक्ष नहीं किया गया था उसे अपील न्यायालयों के समक्ष प्रथम बार उद्भूत करना मंजूर नहीं किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त, कीमत में मात्र वृद्धि इस प्रक्रम पर हस्तक्षेप करने के लिए कोई आधार नहीं हो सकता है । इसे जोड़ते हुए, जैसा कि उपर्युक्त उल्लिखित है, अपीलार्थियों को खंड न्यायपीठ के निर्णय के प्रश्न पर सुने जाने का अधिकार नहीं है, क्योंकि वे संपत्ति के स्वामी नहीं है । तथ्य यह है कि वीरास्वामी, संपत्तियों का विक्रेता, विचारण न्यायालय के समक्ष साक्षी कठघरे में उपस्थित हुआ था और प्रतिवादियों के पक्ष में अपने सभी अन्यसंक्रामणों का समर्थन किया था । इसलिए, न्यायालय की सुविचारित राय में, खंड न्यायपीठ ने सही ही सागी सुब्बा राजू के पक्ष में और अपीलार्थियों के विरुद्ध निष्कर्ष निकाला है और विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री मंजूर किया है । (पैरा 5, 6 और 7)

प्रत्यर्थियों के विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री थॉमस पी. जोसफ यह दलील देने में न्यायानुमत है कि ये अपीलें कायम रखे जाने योग्य नहीं हैं क्योंकि कई प्रतिवादियों को जिनके विरुद्ध अनुतोष की ईप्सा/दावा किया गया है, या तो पक्षकारों की सूची से हटा दिया गया है या उनकी मृत्यु हो गई है । ऐसे मृत प्रतिवादियों के विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर नहीं लाया गया है । इस न्यायालय के समक्ष भी सिविल

अपील सं. 4382/2016 उर्फ विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 20376/2004 में के प्रत्यर्थी सं. 7 (डी-8), प्रत्यर्थी सं. 8 (डी-9), प्रत्यर्थी सं. 9 (डी-10) और प्रत्यर्थी सं. 11 (डी-13) की मृत्यु हो गई है । उनके विधिक प्रतिनिधियों को भी अभिलेख पर नहीं लाया गया है । यहां स्वयं यह उल्लेख करना सुसंगत है कि प्रतिवादी सं. 4, 6, 36, 50, 54, 58, 67, 69, 73, 77, 82, 92, 93, 113, 120 और 127 की मृत्यु, विचारण न्यायालय के समक्ष 1984 की मूल वाद सं. 97 के लंबित रहने के दौरान हो गई थी । इतना ही नहीं, प्रतिवादी सं; 20, 53, 64 और 118 की भी मृत्यु हो गई है और उनके विधिक प्रतिनिधियों को भी अभिलेख पर नहीं लाया गया है । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 22 के नियम 4 में यह अधिकथित है कि जहां विधि द्वारा विहित परिसीमा अवधि के भीतर मृतक प्रतिवादी के विधिक प्रतिनिधियों को पक्षकार बनाने के लिए कोई आवेदन नहीं किया जाता है वहां मृतक प्रतिवादी के विरुद्ध वाद का उपशमन हो जाएगा । यह नियम यह उपबंध नहीं करता है कि प्रतिवादी के विधिक प्रतिनिधियों को पक्षकार बनाने में लोप होने पर वाद पूर्णत: उपशमन हो जाएगा । यह नियम, यह उपबंध नहीं करता है कि प्रतिवादी के विधिक प्रतिनिधि को पक्षकार बनाने में लोप करने पर, वाद पूर्णत: उपशमन हो जाएगा । यदि सह-प्रतिवादियों के हित पृथक् हैं, जैसा कि सह-स्वामियों के मामले में, वाद, मृतक पक्षकार के विशिष्ट हित के संबंध में ही उपशमन होता है । ऐसी स्थिति में, अपील के पूर्णत: उपशमन का प्रश्न जिस मामले में उद्भूत होता है, वह सामान्य सिद्धांतों पर निर्भर करता है । यदि मामला ऐसी प्रकृति का है कि मृतक प्रत्यर्थी के विधिक प्रतिनिधियों के अनुपस्थिति में, अन्य प्रत्यर्थियों के विरुद्ध अपील की सुनवाई करने से न्यायालय को अवरुद्ध करता है तो अपील का उपशमन हो जाएगा । अन्यथा, उमशमन उस प्रत्यर्थी के हित के संबंध में ही हो सकता है जिसकी मृत्यु हो गई है । ऐसे मामलों में, यह परीक्षण अपनाया जाता है कि जहां अपील की दशा में, शेष प्रत्यर्थियों के विरुद्ध अपील मंजूर की जा सकती है, वहां उसी वाद में, उसी विषयवस्तु के संबंध में दो विरोधाभासी डिक्रियां पारित की जा सकती हैं या नहीं । न्यायालय उसी संपत्ति के बारे में दो असंगत डिक्रियां पारित नहीं कर सकता है और विरोधाभासी डिक्रियों से बचने के

अनुक्रम में, न्यायालय के पास कोई विकल्प नहीं होता है किन्तु वह अपील को संपूर्णत: खारिज कर सकता है । यदि दूसरी ओर, अपील की सफलता विरोधाभासी डिक्रियों पर निर्भर नहीं करता है तो इस बाबत कोई विधिमान्य कारण नहीं होता है कि क्यों न्यायालय को अपील की सुनवाई नहीं करनी चाहिए और पक्षकारों के बीच विवाद्यकों का न्यायनिर्णयन नहीं करना चाहिए । दूसरी ओर, मामले में, उन कतिपय प्रतिवादियों की अनुपस्थिति जिन्हें कई मृतक प्रतिवादियों के विधिक प्रतिनिधियों के अनुपस्थिति के साथ ही पक्षकारों की सूची से हटा दिया गया है, न्यायालय को अन्य प्रतिवादियों के विरुद्ध अपीलों की सुनवाई करने से अवरुद्ध करेगा । हम, ऐसा कह सकते हैं क्योंकि इन अपीलों को शेष प्रतिवादियों के विरुद्ध मंजूर होने की दशा में उसी वाद में, उसी विषयवस्तु के संबंध में दो विरोधाभासी डिक्रियां पारित हो जाएगी । एक डिक्री उन प्रतिवादियों के पक्ष में पारित हो जाएगी, जिन्हें हटा दिया गया है या जिन्हें मृत्यु हो गई है और जिनके विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर नहीं लाया गया है । जब कि अन्य डिक्री उन प्रतिवादियों के विरुद्ध पारित हो जाएगी जो उसी विषयवस्तु के संबंध में अभिलेख पर है । वाद में विषयवस्तु दो विलों की विधिमान्यता है । न्यायालयों जिनमें उच्च न्यायालय का खंड न्यायपीठ सम्मिलित है, ने संगत तौर पर यह अभिनिर्धारित किया है कि दोनों विल साबित कर दिए गए हैं और इस प्रकार वीरास्वामी दोनों विलों के अधीन फायदाग्राही होने के नाते प्रश्नगत वाद संपत्तियों का पूर्ण स्वामी हो गया था । ऐसी डिक्री उन प्रतिवादियों के पक्ष में अंतिम हो गई है जिन्हें या तो हटा दिया गया है या जिनकी मृत्यु हो गई है और जिनके विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर नहीं लाया गया है । यदि इन अपीलों को अन्य प्रतिवादियों के संबंध में मंजूर किया जाता है तो इन अपीलों में, इस न्यायालय द्वारा पारित डिक्री निश्चित तौर पर अन्य प्रतिवादियों के पक्ष में पहले से पारित डिक्री के विरोधाभास में हो जाएगा । जैसा कि उपर्युक्त उल्लिखित किया गया है, न्यायालय उसी विषयवस्तु के बारे में दो असंगत डिक्रियां पारित नहीं कर सकते हैं । विरोधाभासी डिक्रियों से बचने के लिए न्यायालय के पास कोई विकल्प नहीं होता है किन्तु वे अपीलों को पूर्णत: खारिज कर सकते हैं । (पैरा 8 और 9)

**निर्दिष्ट निर्णय**

पैरा

[2012] (2012) 5 एस. सी. सी. 712 :
**नरिन्द्रजीत सिंह** बनाम **नार्थ स्टार इस्टेट प्रोमोटर्स लि.** ; 7

[2004] (2004) 7 एस. सी. सी. 354 :
**शाहजादा बी.** बनाम **हलीमाबी** । 9

**अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2016 की सिविल अपील सं. 4380-4382.**

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 133 के अधीन अपील ।

**अपीलार्थी की ओर से** सर्वश्री ए. सुब्बा राव और के. एल. डी. एस. बिनोबर, अधिवक्तागण

**प्रत्यर्थियों की ओर से** सर्वश्री थॉमस पी. जोसफ, ज्येष्ठ अधिवक्ता, वी. एन. रघुपति, आर. वी. रामेश्वरन्, मुल्लापुडी रामबाबू, अजय चौधरी, वी. श्रीधर रेड्डी और अभिजीत सेनगुप्ता, अधिवक्तागण

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति मोहन एम. शांतनगौडर ने दिया ।

**न्या. शांतनगौडर** – ये अपीलें, 1992 की लेटर्स पेटेंट अपील सं. 323 और आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, हैदराबाद द्वारा 2001 की अपील सं. 2959 और 2960 में पारित तारीख 11 सितम्बर, 2003 के सामान्य निर्णय के विरुद्ध निदेशित है । इसके के अपीलार्थी अधीनस्थ न्यायाधीश, भीमावरम् की फाइल पर 1984 की मूल वाद सं. 98 (पूर्ववर्ती मूल याचिका सं. 124/1980) में और अधीनस्थ न्यायाधीश, भीमावरम् की फाइल पर 1984 की मूल वाद सं. 97 (पूर्ववर्ती मूल याचिका सं. 10/1982) में वादी थे । वे अधीनस्थ न्यायाधीश, भीमावरम् की फाइल पर 1983 की मूल वाद सं. 72 (पूर्ववर्ती अधीनस्थ न्यायाधीश, नरसापुर की फाइल पर मूल वाद सं. 32/1978) में प्रतिवादी थे ।

2. 1984 की मूल वाद सं. 1998, प्रतिवादी सं. 5 से 25 के विरुद्ध अनुसूची-क संपत्ति के विभाजन के लिए फाइल किया गया था । इस

वाद में, मात्र वीरास्वामी (वादी लक्ष्मीनारासम्मा का पुत्र) द्वारा किए गए एक अन्यसंक्रामण को चुनौती दी गई थी, यद्यपि, वीरास्वामी ने अनुसूची-क के अधीन आने वाले विभिन्न अन्य संपत्तियों का विभिन्न विक्रय विलेखों द्वारा अन्यसंक्रामण किया था । 1984 की मूल वाद सं. 97, अनुसूची-क और ख संपत्तियों के विभाजन के साथ ही उक्त संपत्तियों से प्रतिवादी सं. 26 से 125 और 127 की बेदखली के लिए फाइल किया गया था । 1983 की मूल वाद सं. 72 को सागी सुब्बा राजू (इन अपीलों में प्रत्यर्थियों में से एक) द्वारा भीमावरम् ग्राम के राजस्व सर्वे सं. 347 और 347/3 के 3 एकड़ 56 सेंट्स की सीमा तक की भूमि के बारे में स्वर्गीय वीरास्वामी द्वारा निष्पादित तारीख 19 सितम्बर, 1974 के विक्रय करार के विनिर्दिष्ट पालन के लिए फाइल किया गया था ।

1984 की मूल वाद सं. 97 और 1984 की मूल वाद सं. 98 (अनुसूची-क और ख संपत्तियों का विभाजन के लिए) को विचारण न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था और प्रथम अपील न्यायालय द्वारा 1983 की मूल वाद सं. 72 (विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद) को वादी सागी सुब्बा राजू के पक्ष में संपत्ति का 1/3 भाग का विक्रय का निर्देश देते हुए भागत: डिक्री करते हुए पुष्टि कर दी गई थी और ऐसी डिक्री को प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पुष्टि कर दी गई थी । इन निर्णयों और डिक्रियों से व्यथित होकर अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलें फाइल कीं जिनमें वे असफल रहे । इसलिए, सागी सुब्बा राजू, जिसने विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद में संपत्ति का 1/3 भाग प्राप्त किया था, ने भी उच्च न्यायालय के समक्ष 1992 की लेटर्स पेटेंट अपील सं. 323 फाइल की । उच्च न्यायालय द्वारा इन सभी अपीलों को एक साथ सुना गया और इसमें के अपीलार्थियों के विरुद्ध विनिश्चय दिया गया जिसका अभिप्राय है कि 1984 की मूल वाद सं. 97 और 98 में पारित खारिज निर्णयों और डिक्रियों की उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ द्वारा भी पुष्टि कर दी गई थी । इस प्रकार, तीनों न्यायालयों द्वारा इसमें के अपीलार्थियों के विरुद्ध विभाजन के लिए अपीलार्थियों द्वारा फाइल उन दोनों वादों के संबंध में समवर्ती निष्कर्ष निकाले गए हैं । 1983 की मूल वाद सं. 72 के संबंध में भी खंड न्यायपीठ ने सागी सुब्बा राजू के पक्ष में यथा प्रार्थित और इसमें के अपीलार्थियों के विरुद्ध

डिक्री मंजूर कर लिया था । दूसरे शब्दों में, विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद भी इसमें के अपीलार्थियों के विरुद्ध पूर्णत: डिक्री कर दिया गया था । अतएव, अपीलार्थियों ने इस न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की है ।

3. अपीलार्थियों के विद्वान् अधिवक्ता श्री ए. सुब्बा राव ने हमारे समक्ष अभिलेख पर सामग्रियां प्रस्तुत करते हुए, यह निवेदन किया कि निचले न्यायालय यह निष्कर्ष निकालने में न्यायानुमत नहीं थे कि प्रतिवादियों द्वारा अवलंब लिए गए वीरास्वामी के फायदे के लिए निष्पादित वसीयतें (विल) अर्थात् अनुसूची-क संपत्ति के संबंध में तारीख 14 अगस्त, 1932 के विल (प्रदर्श बी-4/प्रदर्श पी-1) और अनुसूची-ख संपत्ति के संबंध में तारीख 5 अक्तूबर, 1968 के विल (प्रदर्श बी-101/प्रदर्श पी-2) साबित कर दिए गए हैं, कि वादियों ने वाद संपत्तियों में 2/3 भाग प्राप्त किया था और इसलिए, वसीयतें (प्रदर्श बी-4 और बी-106) संपत्तियों के शेष 1/3 भाग से अधिक में हिताधिकारी के किसी अधिकार की पुष्टि नहीं करती हैं । अंतत:, उन्होंने यह निवेदन किया कि प्रतिवादी सं. 5 से 125 और 127, वीरास्वामी (जिसके पक्ष में विल निष्पादित किए गए थे) से संपत्तियों के क्रेता होने के नाते बेदखल किए जाने के दायी है, क्योंकि वीरास्वामी के पास पूर्णतया वाद संपत्तियों में कोई अधिकार, हक या हित प्राप्त नहीं हुआ है, दूसरी ओर, वीरास्वामी को वाद संपत्तियों में मात्र 1/3 भाग ही प्राप्त हुआ है ।

4. इसके विपरीत, प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ का निर्णय न्यायसंगत और समुचित है और इसमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है । विचारण न्यायालय, प्रथम अपील न्यायालय और उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रदर्श बी-4 और प्रदर्श बी-106, विधि के अनुसरण में साबित कर दिए गए हैं और परिणामत: वीरास्वामी उक्त विलों से संपत्ति का स्वामी हो गया है । उन्होंने यह भी निवेदन किया कि प्रतिवादियों/क्रेताओं का वाद संपत्तियों के ऊपर लगभग 40 से 50 वर्षों से अधिक समय से शांतिपूर्ण कब्जा रहा है और प्रतिवादियों में से कुछ ने संपत्तियों का अन्यसंक्रामण भी तृतीय पक्षकारों को कर दिया है । अंतत:, उन्होंने यह निवेदन किया कि अपीलें कायम रखे जाने योग्य नहीं है क्योंकि कई प्रतिवादियों (वीरास्वामी के क्रेताओं)

को इसमें के अपीलार्थियों द्वारा पक्षकारों की सूची से हटा दिया गया है और प्रतिवादियों में से कुछ की वादों के साथ ही प्रथम अपीलों और द्वितीय अपीलों के लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो गई है और इसमें के अपीलार्थियों द्वारा उनके विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर नहीं लाया गया है । इस न्यायालय के समक्ष भी अपील लंबित रहने के दौरान प्रतिवादियों/प्रत्यर्थियों में से कुछ की मृत्यु हो गई है । अपीलार्थियों को ऐसे मृत प्रतिवादियों के विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर लाने की कोई चिंता नहीं थी । परिणामस्वरूप, मृतक और हटाए गए प्रतिवादियों के पक्ष में पारित डिक्री में यह अभिनिर्धारित किया गया कि वीरास्वामी ने संपत्ति का विक्रय करने के अधिकार में अंतिमता प्राप्त कर लिया है और परिणामस्वरूप, ऐसे प्रतिवादियों के पक्ष में किए गए विक्रय भी अंतिमता प्राप्त कर लिए हैं । दूसरे शब्दों में, विलों की विधिमान्यता के साथ ही उनके विक्रय विलेख की भी मृतक/हटाए गए प्रतिवादियों के संबंध में पुष्टि कर दी गई और इसलिए, इन अपीलों जो इस न्यायालय के समक्ष अन्य प्रतिवादियों के संबंध में विचार के लिए लंबित हैं, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, खारिज किए जाने योग्य हैं यदि कोई आदेश इसमें के प्रत्यर्थियों/शेष प्रतिवादियों के हित के प्रतिकूल पारित किया जाता है तो वह उन निर्णयों और डिक्रियों के विरोधाभास में होगा जिनकी मृतक/हटाए गए प्रतिवादियों के विरुद्ध पहले ही पुष्टि कर दी गई है ।

5. प्रदर्श बी-4, तारीख 24 अगस्त, 1932 का विल, अनुसूची-क संपत्ति से संबंधित है । उक्त विल, सुंकारा पदमनाभुदु, जो स्वीकृतत: अनुसूची-क संपत्ति का स्वामी था, द्वारा निष्पादित की गई थी । उसके कोई संतान नहीं थी । उसकी पत्नी की भी उसकी मृत्यु के ठीक पश्चात् मृत्यु हो गई थी । उक्त विल के अधीन हिताधिकारी वीरास्वामी था, जो अन्यथा भी सुंकारा वेंकटरमैया (सुंकारा पदमनाभुदु का भाई) के पौत्र के अलावा कुछ नहीं था । प्रदर्श बी-106, तारीख 5 दिसम्बर, 1968 का विल, अनुसूची-ख संपत्ति से संबंधित है । उक्त विल को लक्ष्मीपति (वीरास्वामी का पिता) द्वारा अपने पुत्र वीरास्वामी के पक्ष में निष्पादित किया गया था । सुंकारा पदमनाभुदु की मृत्यु तारीख 20 अगस्त, 1932 को हुई थी और लक्ष्मीपति की मृत्यु तारीख 21 जनवरी, 1969 को हुई थी । इस प्रकार, सुंकारा पदमनाभुदु और लक्ष्मीपति की मृत्यु के पश्चात्

वीरास्वामी अनुसूची-क और ख, संपत्तियों का स्वामी हो गया था । अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए कुछ नहीं है कि अनुसूची-ख की संपत्तियां, लक्ष्मीपति और उसके पुत्र की संयुक्त संपत्तियां थीं । इसलिए भी वादियों द्वारा यह सिद्ध नहीं किया गया है कि अनुसूची-ख की संपत्तियां विभाजन के लिए उपलब्ध थीं । उक्त मुद्दे पर विभाजन वादों में अपीलार्थियों/वादियों के विरुद्ध तीनों न्यायालयों के समवर्ती निष्कर्ष हैं । वादी लक्ष्मीनारासम्मा, लक्ष्मीपति की द्वितीय पत्नी है, जिसने 1984 की मूल वाद सं. 97 और 98 फाइल करके अपने पुत्र वीरास्वामी द्वारा प्रतिवादी सं. 5 से 125 के पक्ष में किए गए अन्यसंक्रामण को विनिर्दिष्टत: प्रश्नगत नहीं किया है । उसके द्वारा विक्रय विलेखों को रद्द करने के लिए कोई प्रार्थना नहीं की गई है । सभी तीनों न्यायालयों ने तथ्यों के आधार पर यह समवर्ती निष्कर्ष निकाला है कि दोनों विल साबित कर दिए गए हैं । हमारे समक्ष भी विलों इत्यादि की विधिमान्यता के निष्कर्ष को अपीलार्थियों द्वारा गंभीरतापूर्वक विवादित नहीं किया गया है । अन्यथा भी, तीनों न्यायालयों के निर्णयों का परिशीलन करने के पश्चात्, हमारा यह निष्कर्ष है कि दोनों विलों के सबूत के संबंध में समनुदेशित कारण और निकाले गए निष्कर्ष न्यायसंगत और समुचित है । अतएव, इसमें हस्तक्षेप करना अपेक्षित नहीं है ।

6. चूंकि, वीरास्वामी प्रदर्श बी-4 और बी-106 विलों को ध्यान में रखते हुए, संपत्तियों का एकमात्र स्वामी था, इसलिए, स्वाभाविकत: उसे संपत्तियों का अन्यसंक्रामण करने का अधिकार था । प्रतिवादी सं. 5 से 125 और 127 ने वीरास्वामी से मूल्यवान प्रतिफल के एवज में संपत्तियां क्रय की थीं । जैसा कि उपर्युक्त उल्लिखित है, इन प्रतिवादियों/क्रेताओं के पक्ष में किए गए अन्यसंक्रामणों को विभाजन के लिए दोनों उपर्युक्त वादों में अपीलार्थियों द्वारा प्रश्नगत नहीं किया गया था । चाहे जैसी भी स्थिति हो, क्योंकि हमारा यह निष्कर्ष है कि निचले न्यायालय, यह निष्कर्ष निकालने में न्यायानुमत है कि प्रतिवादी सं. 5 से 125 और 127 के पक्ष में किए गए विक्रय न्यायसंगत और समुचित है और क्योंकि वे मूल्यवान प्रतिफल के एवज में सद्भाविक क्रेता हैं, इसलिए, इसमें हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है ।

7. तथापि, अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री ए. सुब्बा राव ने

बलपूर्वक अपना तर्क दिया है जहां तक कि यह विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद का संबंध है । उनके अनुसार, इसमें के अपीलार्थियों (विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद में प्रतिवादी) को अत्यधिक कठिनाई होगी यदि विनिर्दिष्ट पालन के लिए डिक्री की पुष्टि की जाती है, क्योंकि विक्रय करार के समय से संपत्तियों के मूल्य में अत्यधिक वृद्धि हुई है । मूल्य में वृद्धि के ऐसे अभिवाक् को इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि अपीलार्थियों को प्रथम प्रेरणा में विक्रय करार को प्रश्नगत करने का कोई अधिकार नहीं था । जैसा कि उपर्युक्त उल्लिखित किया गया है चूंकि वीरास्वामी संपत्तियों जिनमें विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद में अंतर्वलित संपत्तियां सम्मिलित हैं, का पूर्ण स्वामी था, इसलिए, उसे विक्रय करार करने का भी अधिकार था । पदमनाभुदु द्वारा प्रदर्श बी-4 विल के अधीन इस संपत्ति का वीरास्वामी को वसीयत किया गया था । अतएव, वीरास्वामी संपत्ति का एकमात्र स्वामी था । परिणामस्वरूप, उसने पिछले तारीख 19 सितम्बर, 1974 को सागी सुब्बा राजू के साथ विक्रय करार किया था । वाद, वर्ष 1978 में फाइल हुआ था, जो बाद में अन्य न्यायालय में स्थानांतरित हो गया था और उसे 1983 की मूल वाद सं. 72 के रूप में पुन: संख्यांकित किया गया था । वर्ष 1978 से यह मुकदमा भूतलक्षी क्रेता द्वारा लड़ा जा रहा है । वर्ष 1974 में लगभग साढ़े तीन एकड़ की संपत्ति का 51,000/- रुपए के एवज में भूतलक्षी क्रेता के पक्ष में विक्रय करने के लिए वीरास्वामी सहमत हुआ था । ऐसी कीमत के बारे में, विक्रेता के साथ ही भूतलक्षी क्रेता के बीच सहमति हुई थी । यह न्यायालय, उक्त क्षेत्र अर्थात् भीमावरम ग्राम, आंध्र प्रदेश में वर्ष 1974 में यथास्थित संपत्ति के मूल्य की कल्पना नहीं कर सकता है । चाहे जैसी भी स्थिति हो, हमारा यह निष्कर्ष है कि विचारण न्यायालय के समक्ष इसमें के अपीलार्थियों द्वारा न तो ऐसा अभिवचन किया गया न ही साबित किया गया है । विचारण न्यायालय के समक्ष प्रयास करने से संबंधित कोई विवाद्यक उद्भूत नहीं किया गया था । अभिवाक्, जो विचारण न्यायालय के समक्ष नहीं किया गया था उसे अपील न्यायालयों के समक्ष प्रथम बार उद्भूत करना मंजूर नहीं किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त, कीमत में मात्र वृद्धि इस प्रक्रम पर हस्तक्षेप करने के लिए कोई आधार नहीं हो सकता है (देखें : **नरिन्द्रजीत सिंह** बनाम **नार्थ स्टार इस्टेट प्रोमोटर्स**

**लि**[1]**.** वाले मामले में इस न्यायालय का निर्णय) । इसे जोड़ते हुए, जैसा कि उपर्युक्त उल्लिखित है, अपीलार्थियों को खंड न्यायपीठ के निर्णय के प्रश्न पर सुने जाने का अधिकार नहीं है, क्योंकि वे संपत्ति के स्वामी नहीं हैं । तथ्य यह है कि वीरास्वामी, संपत्तियों का विक्रेता, विचारण न्यायालय के समक्ष साक्षी कठघरे में उपस्थित हुआ था और प्रतिवादियों के पक्ष में अपने सभी अन्यसंक्रमणों का समर्थन किया था । इसलिए, हमारे सुविचारित राय में, खंड न्यायपीठ ने सही ही सागी सुब्बा राजू के पक्ष में और अपीलार्थियों के विरुद्ध निष्कर्ष निकाला है और विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री मंजूर किया है ।

8. किसी भी दशा में, प्रत्यर्थियों के विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री थॉमस पी. जोसफ यह दलील देने में न्यायानुमत हैं कि ये अपीलें कायम रखे जाने योग्य नहीं हैं क्योंकि कई प्रतिवादियों को जिनके विरुद्ध अनुतोष की ईप्सा/दावा किया गया है, या तो पक्षकारों की सूची से हटा दिया गया है या उनकी मृत्यु हो गई है । ऐसे मृत प्रतिवादियों के विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर नहीं लाया गया है । इस न्यायालय के समक्ष भी सिविल अपील सं. 4382/2016 अर्थात् विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 20376/2004 में के प्रत्यर्थी सं. 7 (डी-8), प्रत्यर्थी सं. 8 (डी-9), प्रत्यर्थी सं. 9 (डी-10) और प्रत्यर्थी सं. 11 (डी-13) की मृत्यु हो गई है । उनके विधिक प्रतिनिधियों को भी अभिलेख पर नहीं लाया गया है । यहां स्वयं यह उल्लेख करना सुसंगत है कि प्रतिवादी सं. 4, 6, 36, 50, 54, 58, 67, 69, 73, 77, 82, 92, 93, 113, 120 और 127 की मृत्यु, विचारण न्यायालय के समक्ष 1984 की मूल वाद सं. 97 के लंबित रहने के दौरान हो गई थी । इतना ही नहीं, प्रतिवादी सं; 20, 53, 64 और 118 की भी मृत्यु हो गई है और उनके विधिक प्रतिनिधियों को भी अभिलेख पर नहीं लाया गया है ।

9. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 22 के नियम 4 में यह अधिकथित है कि जहां विधि द्वारा विहित परिसीमा अवधि के भीतर मृतक प्रतिवादी के विधिक प्रतिनिधियों को पक्षकार बनाने के लिए कोई आवेदन नहीं किया जाता है वहां मृतक प्रतिवादी के विरुद्ध वाद का

---

[1] (2012) 5 एस. सी. सी. 712.

उपशमन हो जाएगा । यह नियम यह उपबंध नहीं करता है कि प्रतिवादी के विधिक प्रतिनिधियों को पक्षकार बनाने में लोप होने पर, वाद का पूर्णत: उपशमन हो जाएगा । यह नियम, यह उपबंध नहीं करता है कि प्रतिवादी के विधिक प्रतिनिधि को पक्षकार बनाने में लोप करने पर, वाद पूर्णत: उपशमन हो जाएगा । यदि सह-प्रतिवादियों के हित पृथक् हैं, जैसा कि सह-स्वामियों के मामले में, वाद, मृतक पक्षकार के विशिष्ट हित के संबंध में ही उपशमन होता है । ऐसी स्थिति में, अपील के पूर्णत: उपशमन का प्रश्न जिस मामले में उद्भूत होता है, वह सामान्य सिद्धांतों पर निर्भर करता है । यदि मामला ऐसी प्रकृति का है कि मृतक प्रत्यर्थी के विधिक प्रतिनिधियों की अनुपस्थिति में, अन्य प्रत्यर्थियों के विरुद्ध अपील की सुनवाई करने से न्यायालय को अवरुद्ध करता है तो अपील का उपशमन हो जाएगा । अन्यथा, उमशमन उस प्रत्यर्थी के हित के संबंध में ही हो सकता है जिसकी मृत्यु हो गई है । ऐसे मामलों में, यह परीक्षण अपनाया जाता है कि जहां अपील की दशा में, शेष प्रत्यर्थियों के विरुद्ध अपील मंजूर की जा सकती है, वहां उसी वाद में, उसी विषयवस्तु के संबंध में दो विरोधाभासी डिक्रियां पारित की जा सकती हैं या नहीं । न्यायालय उसी संपत्ति के बारे में दो असंगत डिक्रियां पारित नहीं कर सकता है और विरोधाभासी डिक्रियों से बचने के अनुक्रम में, न्यायालय के पास कोई विकल्प नहीं होता है किन्तु वह अपील को संपूर्णत: खारिज कर सकता है । यदि दूसरी ओर, अपील की सफलता विरोधाभासी डिक्रियों पर निर्भर नहीं करता है तो इस बाबत कोई विधिमान्य कारण नहीं होता है कि क्यों न्यायालय को अपील की सुनवाई नहीं करनी चाहिए और पक्षकारों के बीच विवाद्यकों का न्यायनिर्णयन नहीं करना चाहिए । दूसरी ओर, मामले में, उन कतिपय प्रतिवादियों की अनुपस्थिति जिन्हें कई मृतक प्रतिवादियों के विधिक प्रतिनिधियों की अनुपस्थिति के साथ ही पक्षकारों की सूची से हटा दिया गया है, न्यायालय को अन्य प्रतिवादियों के विरुद्ध अपीलों की सुनवाई करने से अवरुद्ध करेगा । हम, ऐसा कह सकते हैं क्योंकि इन अपीलों को शेष प्रतिवादियों के विरुद्ध मंजूर होने की दशा में उसी वाद में, उसी विषयवस्तु के संबंध में दो विरोधाभासी डिक्रियां पारित हो जाएंगी । एक डिक्री उन प्रतिवादियों के पक्ष में पारित हो जाएगी, जिन्हें हटा दिया गया है या जिनकी मृत्यु हो गई है और जिनके विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर नहीं लाया गया

है । जब कि अन्य डिक्री उन प्रतिवादियों के विरुद्ध पारित हो जाएगी जो उसी विषय-वस्तु के संबंध में अभिलेख पर है । वाद में विषय-वस्तु दो विलों की विधिमान्यता है । न्यायालयों जिनमें उच्च न्यायालय का खंड न्यायपीठ सम्मिलित है, ने सुसंगत तौर पर यह अभिनिर्धारित किया है कि दोनों विल साबित कर दिए गए हैं और इस प्रकार वीरास्वामी दोनों विलों के अधीन फायदाग्राही होने के नाते प्रश्नगत वाद संपत्तियों का पूर्ण स्वामी हो गया था । ऐसी डिक्री उन प्रतिवादियों के पक्ष में अंतिम हो गई है जिन्हें या तो हटा दिया गया है या जिनकी मृत्यु हो गई है और जिनके विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर नहीं लाया गया है । यदि इन अपीलों को अन्य प्रतिवादियों के संबंध में मंजूर किया जाता है तो इन अपीलों में, इस न्यायालय द्वारा पारित डिक्री निश्चित तौर पर अन्य प्रतिवादियों के पक्ष में पहले से पारित डिक्री के विरोधाभास में हो जाएगा । जैसा कि उपर्युक्त उल्लिखित किया गया है, न्यायालय उसी विषय-वस्तु के बारे में दो असंगत डिक्रियां पारित नहीं कर सकते हैं । विरोधाभासी डिक्रियों से बचने के लिए न्यायालय के पास कोई विकल्प नहीं होता है किन्तु वे अपीलों को पूर्णत: खारिज कर सकते हैं (देखें : **शाहजादा बी.** बनाम **हलीमाबी**[1] वाले मामले में इस न्यायालय का निर्णय) ।

10. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, अपीलें न केवल कायम नहीं रखने के आधार पर असफल होती हैं, अपितु गुणागुणों पर भी असफल होती हैं और इन्हें खारिज किया जाता है ।

अपीलें खारिज की गईं ।

क.

---

[1] (2004) 7 एस. सी. सी. 354.